

हिन्दी की सामाजिक प्रतिष्ठा में गिरावट : कारण, परिणाम और समाधान

भुवनेश बैरागी

हिन्दी विभाग, उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल (म.प्र.)

सारांश-यह शोध-पत्र भारतीय समाज में हिंदी के प्रति व्याप्त तिरस्कार-भाव, उसके ऐतिहासिक-सांस्कृतिक कारणों और समकालीन सामाजिक परिणामों की समीक्षात्मक पड़ताल प्रस्तुत करता है। हिंदी भारत की सांस्कृतिक चेतना, दार्शनिक विरासत और सामाजिक संरचना में एक केन्द्रीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है; तथापि आधुनिक समय में इसके प्रति तिरस्कार भाव, उपेक्षा और हीनता-बोध के रूप में विकसित मानसिकता एक गंभीर भाषिक-सांस्कृतिक संकट का निर्माण कर रही है। इस शोध में भाषा-नीति, शिक्षा-प्रणाली, औपनिवेशिक प्रभाव, शहरी अभिजात मानसिकता और वैश्विक पूँजीवादी संस्कृति को प्रमुख कारणों के रूप में स्थापित किया गया है। साथ ही तिरस्कार-भाव के सामाजिक, मानसिक, सांस्कृतिक और भाषिक परिणामों का विस्तार से विश्लेषण किया गया है। अंततः शोध-पत्र समाधान की दिशा में भाषा-सम्मान, शिक्षा-सुधार, सांस्कृतिक पुनर्जीवन और समाज-आधारित भाषिक सशक्तिकरण की आवश्यकता को रेखांकित करता है। यह शोध भारतीय भाषिक विमर्श में हिंदी की अस्मिता एवं भाषिक-समानता के पुनर्स्थापन की दिशा में एक महत्वपूर्ण चिंतन प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द -हिंदी-अवमानना, भाषा-तिरस्कार, सांस्कृतिक पहचान, औपनिवेशिक प्रभाव, सामाजिक संरचना, मातृभाषा-सम्मान, पूँजीवाद
परिचय-भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि मनुष्य की स्मृति, संस्कृति, ज्ञानपरंपरा, सामूहिक चेतना और सभ्यता का आधार है। किसी भी राष्ट्र की भाषा उसके भीतर बसे समाज की आत्मा होती है। हिंदी, भारत की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा होने के बावजूद, अपने ही देश में तिरस्कार और अवमानना का सामना करती रही है। अंग्रेजी को आधुनिकता का प्रतीक और हिंदी को पिछड़ेपन का संकेत मान लेने की मानसिकता ने एक गहरे सांस्कृतिक विच्छेदन को जन्म दिया है। हिंदी के प्रति यह तिरस्कार वस्तुतः भाषा का नहीं, बल्कि मानसिक दासता का परिणाम है। यह समस्या केवल भाषिक नहीं, बल्कि दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्तर पर गहराई से जड़ें जमाए हुए है। यह शोध-पत्र इन्हीं कारणों, परिणामों और समाधानों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

शोध की समस्या-हिंदी बोलने वालों में स्वभाषा के प्रति लज्जा, हीनता-बोध और तिरस्कार की भावना क्यों विकसित हो रही है, और इसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिणाम क्या हैं?

शोध उद्देश्य

1. हिंदी के प्रति तिरस्कार-भाव के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों की पहचान करना।
2. इस तिरस्कार-भाव के सांस्कृतिक और शैक्षिक परिणामों का विश्लेषण करना।
3. हिंदी-सम्मान और भाषिक पुनर्निर्माण के प्रभावी उपाय प्रस्तावित करना।
4. भाषिक असमानता और सांस्कृतिक आत्महीनता की समस्या को दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में समझना

शोध-पद्धति

यह शोध गुणात्मक, विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक पद्धति पर आधारित है। उपलब्ध शोध-लेखों, पुस्तकों, सरकारी भाषा-नीति दस्तावेजों, सामाजिक अध्ययन और भाषिक-सांस्कृतिक विमर्शों की समीक्षात्मक व्याख्या की गई है। ऐतिहासिक औपनिवेशिक प्रभावों और आधुनिक

सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। समाधान हेतु भाषा-नीति, समाजशास्त्र, दार्शनिक चिंतन और सांस्कृतिक अध्ययन के सिद्धांतों का अंतर-विषयक उपयोग किया गया है।

चर्चा एवं विश्लेषण

1. हिंदी के प्रति तिरस्कार-भाव के कारण

(1) औपनिवेशिक मानसिकता का रिसता हुआ प्रभाव
अंग्रेजी को 'शासक वर्ग की भाषा' और हिंदी को 'गुलाम जनता की बोली' मानने का भ्रम अभी तक पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ। शिक्षा, न्याय, प्रशासन और उच्च रोजगार अंग्रेजी-आधारित होने से अंग्रेजी को प्रतिष्ठा और हिंदी को उपेक्षा मिली।

(2) शहरी उच्चवर्गीय अभिजात संस्कृति

नगरों में अंग्रेजी बोलना आधुनिकता, बुद्धिमत्ता और उच्च सामाजिक स्थिति का प्रतीक बना दिया गया। हिंदी बोलने वाला व्यक्ति 'अकुशल' या 'कम-शिक्षित' मान लेने की प्रवृत्ति स्थाई होती गई।

(3) शिक्षा-प्रणाली का दोष

विद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम को श्रेष्ठ मानकर हिंदी माध्यम को निम्न वर्ग से जोड़ दिया गया। भाषा के आधार पर समाज का विभाजन "अंग्रेजी जानने वाले सफल, हिंदी जानने वाले पिछड़े" एक खतरनाक सामाजिक संरचना बना गया।

(4) भाषा-आधारित नौकरी-संस्कृति

देश की उच्च नौकरियों, निजी कंपनियों और तकनीकी क्षेत्रों में अंग्रेजी को अनिवार्य कर देने से हिंदी को कार्य-स्थल की भाषा बनने का अवसर नहीं मिला।

(5) समाज में फैली भाषिक हीनता

बहुत से परिवारों में हिंदी बोलने का मज़ाक बनाया जाता है।
"हिंदी में बोलकर क्या मिलेगा?"

"अंग्रेजी में बोलो वरना बेइज्जती हो जाएगी।"

यह मानसिक दासता हिंदी के लिए सबसे बड़ा खतरा है।

(6) मीडिया और मनोरंजन उद्योग का प्रभाव

फ़िल्मों, विज्ञापनों और टीवी में अंग्रेजी मिश्रित हिंदी को 'कूल' और शुद्ध हिंदी को 'अजीब' बनाकर प्रस्तुत किया गया। इससे युवा पीढ़ी में हिंदी से दूरी बनने लगी।

2. हिंदी के प्रति तिरस्कार-भाव के परिणाम

(1) भाषिक आत्महीनता का प्रसार

हिंदी भाषियों में स्वयं की भाषा बोलने पर संकोच, शर्म और असुरक्षा गहराई है। यह आत्महीनता सांस्कृतिक व्यक्तित्व को कमजोर करती है।

(2) ज्ञान-विकास में बाधा

जब विद्यार्थी अपनी मातृभाषा में सोचने की बजाय विदेशी भाषा में सोचने का दबाव महसूस करते हैं, तो उनका ज्ञान-स्तर सतही रह जाता है।

(3) सामाजिक विभाजन

भाषा के आधार पर नव-जातीयता उत्पन्न हुई

"अंग्रेजी वाले उच्च वर्ग"

"हिंदी वाले निम्न वर्ग"

यह विषमता सामाजिक एकता को तोड़ती है।

(4) सांस्कृतिक परंपरा से दूरी

हिंदी से दूरी का अर्थ

भारतीय ज्ञान परंपरा, साहित्य दर्शन, सांस्कृतिक चेतना से दूरी है। परिणामस्वरूप युवा पीढ़ी अपनी जड़ों से कटती जा रही है।

(5) आर्थिक अवसरों में असमानता

हिंदी भाषी विद्यार्थी अंग्रेजी-कुशल विद्यार्थियों के सामने नौकरी की प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाते हैं। इससे भाषिक-आधारित आर्थिक असमानता बढ़ती है।

03. संविधान द्वारा हिंदी को दिए गए स्थान का प्रभावी क्रियान्वयन न होना

भारतीय संविधान निर्माण के समय हिंदी को राष्ट्र की राजभाषा के रूप में स्थापित करने के प्रश्न पर संविधान सभा में व्यापक बहस हुई। बहुमत ने हिंदी को राजभाषा तथा देवनागरी लिपि को आधिकारिक लिपि के रूप में स्वीकार किया। परिणामस्वरूप अनुच्छेद 343 से 351 तक हिंदी के संवर्धन और क्रमबद्ध विस्तार के लिए स्पष्ट व्यवस्था की गई। उद्देश्य यह था कि 15 वर्षों की अंतरिम अवधि के बाद हिंदी प्रशासन, न्यायपालिका, शिक्षा तथा शासन के सभी स्तरों पर प्रमुख भाषा के रूप में स्थापित हो जाए।

परंतु संविधान की यह मंशा व्यावहारिक धरातल पर साकार नहीं हो सकी। इसके पीछे कई ऐतिहासिक और सामाजिक कारण विद्यमान रहे।

1. अंग्रेजी शिक्षित अभिजात्य वर्ग का हित-संघर्ष

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय शासन और प्रशासन पर वही वर्ग प्रभावी था जो अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित था। यह वर्ग अंग्रेजी भाषा के माध्यम से प्राप्त शक्ति, प्रतिष्ठा और नौकरशाही नियंत्रण को छोड़ना नहीं चाहता था।

इस वर्ग को आशंका थी कि हिंदी के पूर्ण रूप से लागू होने पर उनकी भाषाई प्रधानता समाप्त हो जाएगी।

अंग्रेजी संरचना को बनाए रखना उनके सामाजिक श्रेष्ठत्व और प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिकोण से लाभकारी था।

इसलिए संविधान में हिंदी के पक्ष में लिए गए निर्णयों के बावजूद अभिजात्य वर्ग ने कई नीतियों में ऐसी स्थितियाँ निर्मित कीं, जिससे अंग्रेजी का वर्चस्व बना रहे और हिंदी का विस्तार धीमा पड़ जाए।

2. 'सत्तात्मक भाषा-वर्ग' का निर्माण-स्वतंत्रता के बाद अंग्रेजी केवल एक भाषा नहीं रही, बल्कि एक "सत्तात्मक संरचना" बन गई

नौकरियों में चयन

उच्च प्रशासनिक पदों पर पहुँच

न्यायिक प्रणाली

उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा

इन सभी क्षेत्रों में अंग्रेजी को संरचनात्मक रूप से स्थापित किया गया। इससे हिंदी भाषी जनसमूह एक प्रकार से अवरोधित वर्ग में बदल गया, जिसे अपनी ही मातृभाषा के बहुआयामी उपयोग हेतु अधिकार नहीं थे।

3. संविधान सभा की शर्तों का पालन न होना-संविधान में स्पष्ट था कि 1965 के बाद हिंदी प्रशासनिक भाषा बनेगी। किन्तु

1963 का लाया गया प्रस्ताव जिसमें अंग्रेजी को "जब तक आवश्यक हो" उपयोग में रखने की व्यवस्था कर दी गई।

यह वाक्यांश इतना व्यापक था कि अंग्रेजी को अनिश्चितकाल तक संरक्षित करने का मार्ग खुल गया।

इस प्रकार संवैधानिक उद्देश्य और वास्तविक नीति के बीच एक स्पष्ट अंतराल उत्पन्न हुआ।

4. हिंदी विरोध की राजनीतिक परिस्थितियाँ

कुछ प्रदेशों, विशेषकर दक्षिण भारत में, राजनीतिक दलों ने हिंदी विरोध को पहचान-राजनीति का रूप दिया। अभिजात्य वर्ग भी इस बहाने को उपयोग करता रहा ताकि अंग्रेजी को यथावत बनाए रखा जा सके। हिंदी को लेकर उत्पन्न विरोध वास्तव में अंग्रेजी के प्रति अनुराग नहीं था, बल्कि स्थानीय राजनीति और शक्ति-संतुलन का भाग था। इस विरोध ने केंद्र सरकारों को हिंदी को पूर्ण रूप से लागू करने में शिथिल कर दिया।

5. परिणाम: करोड़ों हिंदी भाषियों का संरचनात्मक वंचनसंविधान द्वारा लिए गए सकारात्मक निर्णयों के लागू न होने का सीधा परिणाम भाषा-आधारित असमानता के रूप में सामने आया। हिंदी भाषी युवाओं को नौकरियों में अंग्रेजी दक्षता के नाम पर बाधाओं का सामना करना पड़ा। प्रशासनिक प्रक्रियाएँ अंग्रेजी-केंद्रित होने से सामान्य नागरिक सरकार से दूरी महसूस करता रहा। न्यायपालिका में अंग्रेजी की अनिवार्यता जनता को न्याय से दूर ले गई। सामाजिक स्तर पर हिंदी भाषी समुदाय में हीनता-बोध और भाषा-आश्रित निर्भरता उत्पन्न हुई। इस प्रकार, संविधान की स्पष्ट मंशा के बावजूद, हिंदी भाषा आज भी वही स्थान प्राप्त नहीं कर सकी जिसकी परिकल्पना संविधान निर्माताओं ने की थी। अभिजात्य वर्ग की भाषिक राजनीति, नीतिगत शिथिलता और अंग्रेजी सत्ता-ढाँचे ने हिंदी की प्रगति को बाधित किया—और इसका सबसे बड़ा भार उन करोड़ों हिंदी भाषियों को उठाना पड़ा जिनके लिए हिंदी केवल भाषा नहीं, बल्कि पहचान, संस्कृति और जीवन की भाषा है।

4. समाधान

(1) शिक्षा-प्रणाली में मातृभाषा आधारित मॉडल-नई शिक्षा नीति (NEP-2020) के अनुसार प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक हिंदी-केंद्रित शिक्षा मॉडल विकसित होना चाहिए। मातृभाषा में पढ़ाई, शोध, तकनीकी और वैज्ञानिक सामग्री उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

(2) हिंदी के प्रति सम्मान-भाव का सामाजिक निर्माण-परिवार, विद्यालय और समाज तीनों स्तरों पर यह संदेश प्रसारित करना होगा कि "अपनी भाषा बोलना कमजोरी नहीं, पहचान है।"

(3) प्रशासन और न्याय में हिंदी का विस्तार-सरकारी कार्यालयों, न्यायालयों, विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी संस्थानों में हिंदी को कार्य-भाषा बनाना हिंदी-सम्मान की अनिवार्य शर्त है।

(4) वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली का विकास-हिंदी में विज्ञान, इंजीनियरिंग, चिकित्सा और तकनीक की शब्दावली का व्यापक विकास आवश्यक है, ताकि ज्ञान-विज्ञान का पूरा संसार हिंदी में उपलब्ध हो सके।

(5) मीडिया व डिजिटल स्पेस में हिंदी की प्रतिष्ठा-हिंदी में उच्च-गुणवत्ता वाले साहित्यिक, बौद्धिक और वैज्ञानिक कंटेंट का निर्माण शुद्ध हिंदी को प्रतिष्ठा देने वाली मीडिया नीतियाँ युवा पीढ़ी को भाषा से जोड़ने में निर्णायक साबित होंगी।

(6) भाषिक-समानता की नैतिक चेतना-समाज में यह चेतना विकसित करनी होगी कि "भाषा किसी की श्रेष्ठता या निकृष्टता निर्धारित नहीं करती। किसी भाषा को नीचा दिखाना मानव गरिमा के विरुद्ध है।"

(7) हिंदी भाषा के असीम रोजगार अवसरों से युवा पीढ़ी को परिचित कराना-हिंदी आज केवल एक भाषा नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर उभरती हुई शक्ति है। भारत में शिक्षा, बैंकिंग, प्रशासन, साहित्य, फिल्म, लेखन, पत्रकारिता, प्रकाशन, रेडियो, टीवी, डिजिटल मीडिया, विज्ञापन, अनुवाद, पर्यटन, सांस्कृतिक संस्थान, सोशल मीडिया प्रबंधन जैसे अनगिनत क्षेत्रों में हिंदी विशेषज्ञों की मांग लगातार बढ़ रही है। स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में अध्यापन के विशाल अवसर हैं, वहीं बैंक, न्यायालय, सरकारी विभाग, निजी कंपनियाँ और मल्टीनेशनल संस्थान भी हिंदी में फाइलिंग, नोटिंग-ड्राफ्टिंग, कंटेंट राइटिंग और कॉर्पोरेट कम्युनिकेशन के लिए बड़े पैमाने पर नौकरियाँ प्रदान कर रहे हैं। फिल्म उद्योग, OTT, रेडियो, पटकथा-लेखन, गीत-लेखन, उपन्यास, ब्लॉगिंग, यूट्यूब और पांडकास्ट जैसे नए मीडिया प्लेटफॉर्म भी युवाओं के लिए कमाई के आकर्षक अवसर खोल रहे हैं।

विदेशों में भी हिंदी के रोजगार क्षेत्र लगातार विस्तृत हो रहे हैं। अमेरिका, कनाडा, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, खाड़ी देशों और एशियाई देशों में हिंदी शिक्षक, अनुवादक, इंटरप्रेटर, अंतरराष्ट्रीय मीडिया संवाददाता, संस्कृति-प्रचार विशेषज्ञ, पर्यटन-मार्गदर्शक, आईटी व कंटेंट इंडस्ट्री के हिंदी लेखक तथा भारतीय दूतावासों में भाषा-विशेषज्ञ के रूप में उल्लेखनीय अवसर उपलब्ध हैं। वैश्विक कंपनियों में ग्राहक-सेवा, लोकलाइजेशन, गेमिंग, AI ट्रेनिंग, कंटेंट मॉडरेशन और डेटा एनोटेशन जैसे क्षेत्रों में हिंदी भाषा का रोजगार तेजी से बढ़ा है। डिजिटल क्रांति ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिंदी जानने वाला युवा न केवल भारत में, बल्कि पूरी दुनिया में अपने कौशल से नई ऊँचाइयों को छू सकता है।

दार्शनिक विमर्श

भाषा मनुष्य की आंतरिक चेतना का विस्तार है। स्वामी विवेकानंद कहते हैं: "जिस राष्ट्र को अपनी भाषा पर गर्व नहीं, वह राष्ट्र लंबे समय तक टिक नहीं सकता।" गांधीजी ने हिंदी को जन-चेतना की भाषा कहा था, तो रामधारी सिंह 'दिनकर' ने इसे राष्ट्र की आत्मा बताया। हिंदी के प्रति तिरस्कार-भाव वस्तुतः भाषा का नहीं, बल्कि स्व के विरुद्ध तिरस्कार का रूप है। यह मनुष्य को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से काटकर उसे मानसिक रूप से पराधीन बनाता है। भाषा-सम्मान केवल भाषिक प्रश्न नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान का दार्शनिक प्रश्न है। हिन्दी सम्मान का अर्थ अपनी पहचान, अपने ज्ञान, अपने अस्तित्व और अपनी सभ्यता का सम्मान।

निष्कर्ष- हिंदी के प्रति तिरस्कार-भाव भारतीय समाज में गहरी ऐतिहासिक और मानसिक जड़ें रखता है। औपनिवेशिक प्रभाव, शिक्षा-प्रणाली, शहरी अभिजात मानसिकता, मीडिया और सामाजिक हीनता इसकी प्रमुख वजहें हैं। इसके परिणाम सामाजिक विभाजन, सांस्कृतिक विच्छेदन, ज्ञान-अवरोध और आर्थिक असमानता के रूप में सामने आए हैं। समाधान के रूप में हिंदी आधारित शिक्षा-प्रणाली, सामाजिक जागरूकता, सांस्कृतिक पुनर्चेतना, प्रशासनिक विस्तार और वैज्ञानिक सामग्री का विकास अत्यंत आवश्यक है। भाषा-हीनता से बाहर निकलकर हिंदी को आत्मविश्वास, गौरव और समृद्धि की दृष्टि से देखने की आवश्यकता है।

हिंदी का सम्मान एक भाषा का नहीं पूरे भारतीय समाज की सामूहिक आत्मा का सम्मान है।

संदर्भ :-

- Chandrabarti, A. (2015). Colonialism and Indian languages. New Delhi: Sage Publications.
- Dalmia, V. (2017). The Nationalization of Hindu Traditions. University of California Press.
- Kumar, K. (2012). Education and Modernity in India. Oxford University Press.
- Nehru, J. (2012). The Discovery of India. Penguin Books.
- Nussbaum, M. (2011). Creating capabilities: The human development approach. Harvard University Press.
- Pollock, S. (2006). The Language of the Gods in the World of Men. University of California Press.
- Rai, A. (2000). Hindi Nationalism. Orient Blackswan.
- Sharma, B. (2018). Language, identity and culture in Indian society. Journal of Indian Culture Studies, 14(2), 45-57.
- Singh, R. (2015). Sociolinguistics of Hindi. Routledge.
- Vivekananda, S. (2019). Complete works of Swami Vivekananda. Advaita Ashrama.
- Das, K. (1968). The English-Language Elite in India.
- Kachru, B. (2006). The English Language in South Asia.
- King, R. D. (1997). Nehru and the Language Politics of India.
- Nehru, J. (1949). Constituent Assembly Debates on Language Policy.
- Rai, A. (2000). Hindi Nationalism.

दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य का अनुशीलन

डॉ. कृष्ण बिहारी राय

निर्देशक

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)

सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या स्नातकोत्तर (स्वशासी)

महाविद्यालय, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.)

ई-मेल kroy20321@gmail.com मो. 9301238696

संजीव कुमार वर्मा

शोधार्थी

एमफिल. नेट, JRF (हिन्दी)

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

सारांश (Abstract) -

भारतीय साहित्य में दलित साहित्य ने सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह साहित्य शोषित वर्ग के जीवन, संघर्ष और विद्रोह का दर्पण है। ओमप्रकाश वाल्मीकि (1950-2013) हिंदी दलित साहित्य के अग्रणी रचनाकार हैं। उनकी आत्मकथा जूठन न केवल व्यक्तिगत अनुभवों का विवरण है, बल्कि यह पूरे दलित समाज की पीड़ा, सामाजिक विषमता और विद्रोह का सजीव दस्तावेज है। वाल्मीकि की कविताएँ (सदियों का संताप, बस! बहुत हो चुका), कहानियाँ (सलाम), नाटक (दो चेहरे) और आलोचना-ग्रंथ (दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र) सामाजिक चेतना और न्याय की अवधारणा को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं। उनका साहित्य आंबेडकरवादी दृष्टिकोण का अनुसरण करता है, जिसमें शिक्षा, संगठन और संघर्ष को दलित मुक्ति का आधार माना गया है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य वाल्मीकि के साहित्यिक योगदान का गहन अनुशीलन करना है, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि उन्होंने हिंदी दलित साहित्य में सामाजिक चेतना, विद्रोह और सांस्कृतिक पुनरुत्थान में क्या भूमिका निभाई। शोध में उनकी आत्मकथा, कविता, कहानी, नाटक और आलोचना के माध्यम से दलित चेतना, सामाजिक असमानता, अस्पृश्यता और न्याय की आवश्यकता का विश्लेषण किया गया है। विशेष रूप से डॉ. भीमराव आंबेडकर के विचारों का उनके साहित्य पर प्रभाव देखा गया है। वाल्मीकि का साहित्य समाज में समानता, सामाजिक न्याय और दलित चेतना को मजबूत करने का महत्वपूर्ण साधन है। यह अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि वाल्मीकि केवल साहित्यकार नहीं, बल्कि दलित समाज के संगठक और प्रेरक भी हैं।

प्रमुख शब्द (Keywords): ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य, ऐतिहासिकता, अस्पृश्यता, सामाजिक न्याय, आंबेडकरवाद, आत्मकथा, हिंदी साहित्य, जातिगत असमानता, विद्रोह और चेतना, साहित्यिक आलोचना।

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय समाज में जातिगत असमानता और अस्पृश्यता का इतिहास सदियों पुराना है। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक भेदभाव ने दलित समाज को लंबे समय तक दमन और उपेक्षा का सामना करने के लिए मजबूर किया। ऐसे समाज में दलित साहित्य केवल भावनाओं या व्यक्तिगत अनुभवों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह सामाजिक चेतना, विद्रोह और न्याय की पुकार का माध्यम बनता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी दलित साहित्य के प्रमुख व्यक्तित्वों में से एक हैं। उनके